164

भारत का विधि आयोग

भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम
(1869 का 4)

से संबंधित

एक सौ चौसठवीं रिपोर्ट

नवम्बर, 1998

न्यायमूर्ति
बी० पी० जीवन रेड्डी
अध्यक्ष, भारत का विधि आयोग

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन
नई दिल्ली - 110 001
टेली० : 3384475
निवास
1, जनपथ
नई दिल्ली - 110 011
टेली० : 3019465

अ० शा० संख्या 6(3) (50)/98-वि० आ० (वि० स०) 18-11-1998

प्रिय डा० एम० थम्बी दुरई,

इस पत्र के साथ मैं "भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम (1869 का 4)" से संबंधित 164वीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

आयोग द्वारा अध्ययन के लिए यह विषय, भारतीय क्रिश्चियनों को लागू लिंग भेद पर आधारित भेदमूलक उपबंधों को देखते हुए, स्वप्रेरणा से अध्ययन के लिए चुना गया था ताकि विधि में विसंगतियों और अस्पष्टता के निराकरण के लिए सिफारिशें की जा सकें।

उल्लेखनीय है कि विधि आयोग ने, अपनी 15वीं रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत "क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1960" नामक विधेयक में अधिनियम के व्यापक संशोधन करने का सुझाव दिया था। आयोग ने, अपनी 22वीं और 90वीं रिपोर्ट में भी इस विषय पर चर्चा की थी। आयोग का यह सुविचारित मत है कि उसके द्वारा इस विषय पर की गई सिफारिशें भारतीय क्रिश्चियन समुदाय के प्रति सामाजिक न्याय के हित में शीघ्रतापूर्वक कार्यान्वित की जाएं।

सादर

भवदीय

हस्ता०/-
(बी० पी० जीवन रेड्डी)

डा० एम० थम्बी दुरई,
भारतीय विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

अनुक्रमणिका

विषय वस्तु

		पृष्ठ
अध्याय 1	प्रारंभिक	3
अध्याय 2	विभिन्न उच्च न्यायालयों के संप्रेक्षण	11
अध्याय 3	विधि आयोग की सिफारिशें	23
	पाद-टिप्पण और संदर्भ	25

अध्याय 1

प्रारंभिक

1.1 **अधिनियम का महत्व और उसके पुनरीक्षण की आवश्यकता**—भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 का अध्ययन विधि आयोग द्वारा उसको सौंपे गए निर्देश-निबंधनों के अनुसरण में, आरंभ किया गया था जो अन्य बातों के साथ आयोग को विधि में असंगतियों, अस्पष्टता और असमानताओं के निराकरण के लिए सिफारिशें करने के लिए आयोग को सशक्त करते हैं । 1869 का अधिनियम, क्रिश्चियन समुदाय के लिए पर्याप्त महत्व वाला एक केन्द्रीय अधिनियम है । विभिन्न न्यायिक विनिश्चयों में बताई गई असमानताओं को देखते हुए, जिनके बारे में पश्चात्वर्ती अध्याय में चर्चा की गई है, अधिनियम का पुनर्विलोकन अत्यधिक आवश्यक प्रतीत होता है ।

1.2 **संक्षेप में अधिनियम की स्कीम**—भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, वर्ष 1869 में "विवाह-विच्छेद तथा विवाह विषयक मामले से संबंधित विधि का संशोधन करने के लिए" अधिनियमित किया गया था । इसका लागू होना क्रिश्चियन धर्म मानने वाले व्यक्तियों तक सीमित है । निरपवादतः, यह उन मामलों के लिए भी पर्याप्त है जहां, विवाह के पक्षकारों में से कोई एक पक्षकार क्रिश्चियन धर्म मानने वाला है (देखिए धारा 2) । धारा 10 में वे आधार बताए गए हैं जिन पर विवाह के विघटन के लिए डिक्री ली जा सकती है । धारा 14 के अनुसार, विघटन के लिए ऐसी डिक्री "न्यायालय" द्वारा मंजूर की जा सकती है, "न्यायालय" शब्द धारा 3 के खंड 4 द्वारा परिभाषित है जिससे, यथास्थिति, उच्च न्यायालय या जिला न्यायालय अभिप्रेत है । तथापि, धारा 17 यह उपबंध करती है कि "किसी जिला न्यायालय द्वारा दी गई विवाह के विघटन की प्रत्येक डिक्री उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होगी । विवाह के विघटन की किसी डिक्री की पुष्टि के मामले (जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या 3 या उससे अधिक है) ऐसे 3 न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा सुनी जाएगी और मतभेद की दशा में, बहुसंख्या की राय अभिभावी होगी या (जहां उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की संख्या 2 है) ऐसे दो न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा सुने जाएंगे और मतभेद की दशा में, वरिष्ठ न्यायाधीश की राय अभिभावी होगी ।" धारा 16 यह उपबंध करती है कि जहां उच्च न्यायालय द्वारा विवाह के विघटन के लिए दी गई डिक्री, (जो किसी जिला न्यायालय की डिक्री की पुष्टि नहीं है) प्रथमतः, अपेक्षात्मक डिक्री होगी जो ऐसी डिक्री की तारीख से छह मास से अन्यून समय के अवसान के पश्चात् तक अंतिम नहीं की जाएगी । धारा 20 यह उपबंध करती है कि किसी जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई अकृत्तता की प्रत्येक डिक्री धारा 17 द्वारा उपबंधित रीति में उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होगी ।

1.3 **अधिनियम के कुछ भेदमूलक कालदोषपूर्ण उपबंध**—धारा 10, जो विवाह के विघटन के लिए आधार विनिर्दिष्ट करती है, निम्नवत है :—

"10. **विघटन के लिए पति कब अर्जी दे सकेगा**—कोई पति जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय को यह अनुरोध करते हुए, अर्जी प्रस्तुत कर सकेगा कि उसका विवाह इस आधार पर विघटित कर दिया जाए कि उसके अनुष्ठापन के बाद उसकी पत्नी जारकर्म की दोषी हुई है ।

विघटन के लिए पत्नी कब अर्जी दे सकेगी—कोई पत्नी जिला न्यायालय या उच्च न्यायालय को यह अनुरोध करते हुए, अर्जी प्रस्तुत कर सकेगी कि उसका विवाह इस आधार पर विघटित कर दिया जाए कि उसके अनुष्ठापन के बाद उसके पति ने, ईसाई धर्म के बदले में कोई दूसरा धर्म मान लिया है, और अन्य स्त्री के साथ किसी प्रकार का विवाह कर लिया है,

या वह अगम्यगमनात्मक जारकर्म का दोषी रहा है,

या जारकर्म सहित द्विविवाह का दोषी रहा है,

या जारकर्म सहित अन्य स्त्री के साथ विवाह का दोषी रहा है,

या बलात्संग, गुदा-मैथुन अथवा पशुगमन का दोषी रहा है,

या जारकर्म के साथ ही ऐसी क्रूरता का दोषी रहा है जो जारकर्म के बिना ही उसे सहवास-विच्छेद की हकदार बना देती,

या जारकर्म के साथ ही उचित कारण बिना, दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए, अभित्यजन का दोषी रहा है ।"

1.4 इस प्रक्रम पर भी, इस बात पर जोर दिया जा सकता है कि धारा 10 महिलाओं के प्रति एक स्पष्ट और द्वेषजनक भेदभाव करती है। जबकि विघटन की वांछा करने वाले पुरुष को केवल अपनी पत्नी के जारकर्म को साबित करने की आवश्यकता है, वही पत्नी से, विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करने में समर्थ हो पाने के लिए, जारकर्म के अतिरिक्त, कुछ अन्य विवाह संबंधी अपराध साबित करने की अपेक्षा की गई है।

1.4.1 भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 55 में उच्च न्यायालय द्वारा दी गई डिक्री के विरुद्ध अपील का उपबंध किया गया है मानो वह डिक्री न्यायालय की अपनी आरंभिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में की गई हो जिससे यह अभिप्रेत है कि धारा 16 के अधीन विवाह के विघटन के लिए उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा किए गए आदेश के विरुद्ध अपील खंडपीठ को की जानी है।

1.4.2 अधिनियम 128 वर्ष से अधिक पहले अधिनियमित किया गया था। इसके प्राचीन और भेदमूलक उपबंधों को देखते हुए, अब यह पुरावशेष हो गया है। विधि आयोग ने, इस समस्या पर पहले भी विचार किया था और विधि के सर्वांगीण पुनर्विलोकन के लिए और उसके स्थान पर एक नया अधिनियम बनाने के लिए बार-बार सिफारिशें करता रहा है।

1.5 **आयोग की पूर्ववर्ती रिपोर्ट और पश्चात्वर्ती परिवृद्धि :** विधि आयोग ने, "क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1960" शीर्षक विधेयक में अधिनियम के व्यापक संशोधनों का सुझाव दिया था। आयोग ने, यह विधेयक अपनी 15वीं रिपोर्ट के साथ प्रस्तुत किया था जिसमें पति और पत्नी दोनों को प्रायः उन सभी आधारों पर, जो विशेष विवाह अधिनियम 1954 में उल्लिखित हैं, विवाह के विघटन के लिए अधिकार दिए गए थे, जिनके अंतर्गत, विधेयक के खंड 30 के अनुसार, जारकर्म, क्रूरता और अधित्यजन हैं। खंड 31 में, विधि आयोग ने, यह भी सिफारिश की कि विवाह-विच्छेद की मंजूरी के लिए उपबंध बनाए जाएं, यदि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के पश्चात्, सहवास पुनः आरंभ नहीं हो जाता है। 15वीं रिपोर्ट के प्राप्त होने पर सरकार ने, विधि आयोग द्वारा दिए गए सुझाव के अनुरूप रीति से एक विधेयक को अंतिम रूप दिया और लोक अभिमत मांगने के पश्चात् विधि आयोग को उसकी राय के लिए मामला पुनः निर्दिष्ट किया। तद्नुसार, लोक अभिमत के विनिश्चय के पश्चात, विधि आयोग ने, अपने पूर्व आधारों को पुनः दोहराते हुए, 22वीं रिपोर्ट[2] प्रस्तुत की। यद्यपि, 22वीं रिपोर्ट की प्राप्ति पर क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1961 संसद् में पुरःस्थापित किया था, किन्तु लोक सभा के विघटन पर वह व्यपगत हो गया। **मैरी सोनिया बनाम भारत संघ**[3] में, भारत संघ द्वारा फाइल किए गए प्रति-शपथपत्र से यह और प्रतीत होता है कि क्रिश्चियन समुदाय के नेताओं से परामर्श करने के पश्चात् केन्द्रीय सरकार ने, एक दूसरा विधेयक, जिसे क्रिश्चियन विवाह विधेयक, 1994 कहा गया, तैयार किया था किन्तु यह स्पष्ट नहीं हुआ कि क्यों अब तक विधेयक संसद् द्वारा अधिनियमित नहीं किया गया। प्रतिशपथपत्र से निम्नलिखित उद्धरण प्रासंगिक हैं :—

> "इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में कि क्रिश्चियन समुदाय के कुछ वर्गों के कड़े विरोध के कारण क्रिश्चियन समुदाय के विवाह और विवाह विषयक मामले से संबंधित व्यापक विधान लाने के लिए भारत सरकार की पूर्व कार्रवाई को अधिनियमित नहीं किया जा सका था। अब, हमें संयुक्त महिला कार्यक्रम, जो एक स्वैच्छिक महिला संगठन है, के प्रयासों के माध्यम से क्रिश्चियन चर्चों से क्रिश्चियन समुदाय की स्वीय विधियों में परिवर्तन के लिए प्रारूप विधेयकों के रूप में व्यापक प्रस्ताव प्राप्त हुए हैं। इन विधेयकों में क्रिश्चियन विवाह विधेयक, 1994 का प्रारूप भी सम्मिलित है जो क्रिश्चियन धर्म को मानने वाले व्यक्तियों के विवाह और विवाह विषयक मामलों से संबंधित विधि को समेकित, संशोधित और अन्य बातों के साथ-साथ संहिताबद्ध करने और भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 और भारतीय क्रिश्चियन विवाह अधिनियम, 1872 का निरसन करने के लिए है। पूर्वोक्त विधेयक में, प्रस्तावित विवाह विच्छेद के आधार, समुदाय की परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक दशाओं और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन उपलब्ध विवाह और विवाह-विच्छेद से संबंधित अभिभावी विधि सहजतः अधिक उदार है। विवाह-विच्छेद के आधारों में अर्जी प्रस्तुत किए जाने के पूर्व, कम से कम दो वर्ष की लगातार अवधि के दौरान, अर्जीदार का अन्य पक्षकार द्वारा अधित्यजन भी सम्मिलित है। यह कहा गया है कि विधेयक को कैथोलिक बिशप कांफ्रेन्स आफ इंडिया (सी० बी० सी० आई०) और नेशनल काउंसिल आफ चर्चेज इन इंडिया (एन० सी० सी० आई०) के चर्चों के 27 सदस्यों और कुछ अन्य स्वतंत्र चर्चों का समर्थन प्राप्त है।
>
> चूंकि, क्रिश्चियन चर्चों ने, अब आवश्यक विधायी प्रस्ताव भेजे हैं, इसलिए, सरकार यथासंभव शीघ्र आवश्यक विधान लाने के उद्देश्य से, उस पर सक्रिय रूप से विचार कर रही है। प्रस्तावों का अध्ययन किया जा रहा है और उनकी परीक्षा की जा रही है।"

1.5.1 **अधिनियम की धारा 10 का संशोधन करने के लिए सिफारिशें करने हेतु विधि आयोग द्वारा अपनी पूर्ववर्ती रिपोर्टों में विचार किए गए क्रिश्चियन समुदाय के सबूत :** टिप्पण में यह भी प्रासंगिक है कि क्रिश्चियन चर्चों के नेताओं, क्रिश्चियन संगमों के प्रतिनिधियों, क्रिश्चियन समुदाय के सदस्यों, विधिज्ञ संगमों और देश के न्यायिक अधिकारियों से साक्ष्य एकत्रित करने

के पश्चात् 15वीं और 22वीं रिपोर्टें (पूर्वोक्त) तैयार की गई थी। रिपोर्ट यह उद्घाटित करेगी कि क्रिश्चियन समुदाय से, अपने को विवाह-विच्छेद के लिए प्रगतिशील आधार, जैसे क्रूरता और परित्याग को सम्मिलित करने के लिए मांग की गई थी, जो विषय पर सभी आधुनिक विधानों में उपलब्ध है। चूंकि, विधि वैसी ही बनी रही इसलिए, 1983 में भारत के विधि आयोग ने, जिसकी अध्यक्षता कोई अन्य नहीं अपितु स्वयम् स्वर्गीय माननीय न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू कर रहे थे, स्वप्रेरणा से अधिनियम की धारा 10 में अंतर्विष्ट उपबंधों को संशोधित करने की तात्कालिक आवश्यकता पर ध्यान दिया और उस धारा का तत्काल संशोधन करने की सिफारिश करते हुए, 17-5-1983 को अपनी 90वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट में दिए गए कारणों को दर्शित करना उपयुक्त है :—

> "जैसा उपर कहा गया है ऐसे कारण, जो धारा 10 को संशोधित करने के लिए अधिक महत्व दे रहे हैं। हम ऐसे संशोधन का संवैधानिक अनिवार्यता के रूप में सम्मान करते हैं।
>
> हमारी राय में, लिंगों के बीच विभेद को दूर करने के संदर्भ में, यदि विधि के समक्ष समानता और विधियों के समान संरक्षण के संवैधानिक आदेश की जांच के लिए बना है तो संशोधन आवश्यक है। यदि संसद् विभेद को नहीं हटाती है तो न्यायालय, मूल अधिकारों के अतिक्रमण का उपचार करने के लिए अपनी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, उसी दिन, धारा को शून्य घोषित करने के लिए बाध्य है.....।"

1.5.2 यद्यपि, उक्त रिपोर्ट के पश्चात् 15 वर्ष से अधिक व्यतीत हो गए हैं, किन्तु उसी आधार पर अधिनियम की धारा 10 को संशोधित करने के लिए संसद् द्वारा कोई प्रभावी कार्रवाई नहीं की गई प्रतीत होती है। आयोग ने, स्त्री-पुरुषों के बीच विभेद को दूर करने के लिए अधिनियम की धारा 10 को संशोधित करने की तत्काल आवश्यकता को पुनः दोहराया और सिफारिश की कि अपमानजनक शब्दों, जिन्हें केरल और आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालयों द्वारा पहले ही हटा दिया गया है, को हटाया जाए।

1.6 **अधिनियम के पुनर्विलोकन के बारे में न्यायालयों के संप्रेक्षण :** भारत के न्यायालयों ने, अधिनियम के अप्रचलित और असंगत स्वरूप पर टिप्पणी की है तथा विभिन्न निर्णयों में विधि के संशोधन की आवश्यकता पर जोर दिया है। **एस० डो० सिल्वाराज बनाम चंद्रिका मैरी**[4] में न्यायमूर्ति अलगिरिस्वामी (जिस पद पर वे पहले थे) ने, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955, पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 और विशेष विवाह अधिनियम, 1954 में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुरूप रीति में अधिनियम को तत्काल संशोधित करने की आवश्यकता पर जोर दिया था। **टी० एम० वासिम बनाम एम० विक्टर**[5] में, न्यायमूर्ति अलगिरिस्वामी के संप्रेक्षणों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् उसी न्यायालय की विशेष न्यायपीठ ने, सिल्वाराज के मामले में, निम्नलिखित संप्रेक्षण किए हैं :—

> "इसी अधिनियम (1869 का 4) में ही ऐसा है कि विधि अभी भी वहीं पर बनी हुई है जहां वह उस समय थी, जब इस अधिनियमिति का जन्म हुआ था जिससे कि विधि द्वारा शासित पक्षकार गंभीर अलाभप्रद स्थिति में है, भले ही पति अपनी पत्नी का पर्याप्त अवधि के लिए अधित्याग कर देता हो, परन्तु वह विवाह-विच्छेद के लिए आधार नहीं होगा। हमारे विचार से यह वास्तविक कठिनाई है और **1869 के अधिनियम सं० 4 के उपबंधों की पुनः जांच करने के लिए तात्कालिक आवश्यकता है** क्योंकि यह अधिनियम इस देश में व्यक्तियों के विशाल समुदाय को शासित करता है जिससे ऐसा किया जा सके कि इसके उपबंध मानवीय और अद्यतन हो सकें।" (जोर दिया गया)।

1.7 इसलिए, सिफारिश की जाती है कि संसद् विवाह-विच्छेद और भारत में क्रिश्चियनों के अन्य संबंधित पहलुओं को शासित करने वाली व्यापक विधि अधिनियमित करे। उपर निर्दिष्ट विधि आयोग की 22वीं रिपोर्ट के साथ संलग्न प्रारूप विधेयक, क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1961 का प्रारूप और क्रिश्चियन विवाह विधेयक 1994 का प्रारूप ऐसी विधि के आधारों की पूर्ति करेगा। हम यह नहीं समझते हैं कि अब इस मामले को और टालने के लिए कोई आधार रह गया है।

अध्याय 2

विभिन्न उच्च न्यायालयों के संप्रेक्षण

भाग 1

2.1 सांविधानिक रूप से अविधिमान्य उपबंध—यद्यपि, इत्तर रूप में, न्यायमूर्ति ए० एम० भट्टाचार्य ने, **स्वप्न घोष बनाम सदानंद घोष**[1] के मामले में, पूर्ण न्यायपीठ की ओर से बोलते हुए, विचाराधीन उपबंधों की सांविधानिकता के संबंध में, निम्नलिखित संप्रेक्षण किए थे :—

> "... यद्यपि, पति, पत्नी के जारकर्म के आधार पर ही विवाह विघटन के लिए हकदार है, किन्तु पत्नी ऐसे विघटन के लिए तब तक हकदार नहीं है जब तक कि कुछ अन्य विवाह विषयक कमियां भी नहीं जुड़ जाती हैं, तब यह समझना कठिन है कि केवल लिंग भेद के आधार पर, इस उपबंध को भेदमूलक और इस प्रकार अधिकारातीत क्यों नहीं माना जाएगा ? संविधान का अनुच्छेद 15 ऐसे आधार पर किसी विभेद को प्रत्यादिष्ट करता है....."

2.2 धारा 10 के अधीन भेदमूलक उपबंध—तो फिर विवाह-विच्छेद अधिनियम के अधीन, क्रिश्चियन दम्पति, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर, विवाह के विघटन के लिए हकदार नहीं है, किन्तु वे केवल, धारा 22 के अधीन न्यायिक पृथक्करण के लिए हकदार हैं जिसका प्रभाव **सहवास विच्छेद** होगा, अर्थात्, पृथक्करण केवल "गृहस्थ जीवन" से ही है जिसमें विवाह विषयक बंधन अविघटित बना रहता है। किन्तु विशेष विवाह अधिनियम, 1954 के अधीन विवाहित दंपत्ति, हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 द्वारा शासित हिन्दू, बौद्ध, सिख और जैन, पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 द्वारा शासित पारसी दम्पत्ति, मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 के अधीन मुस्लिम पत्नियां उन आधारों पर विवाह के विघटन के लिए हकदार है, मात्र न्यायिक पृथक्करण के लिए ही नहीं तो फिर क्या हम क्रिश्चियन दम्पत्तियों के प्रति विभेद नहीं कर रहे हैं और वह भी धर्म द्वारा उनके क्रिश्चियन होने के आधार पर और इस प्रकार अनुच्छेद 15 के आदेश का उल्लंघन नहीं कर रहे हैं जिसमें केवल धर्म के आधार पर विभेद न करने के लिए कहा गया है।

2.2.1 न्यायमूर्ति के० टी० थामस ने भी [1988 की मूल याचिका सं० 5805] में अन्तरिम आदेश[2] पारित करते समय निम्नलिखित संप्रेक्षण किए हैं और निदेश दिए हैं :—

> ".....स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संसद् ने, हिन्दुओं, पारसियों, और भारत में निवास कर रहे विदेशी व्यक्तियों को भी लागू विवाह विधि में, ऐसी अधिनियमितियों में विवाह-विच्छेद के लिए प्रगामी और यथार्थ आधारों का समावेश करके आमूल परिवर्तन किए हैं किन्तु या तो अकारण या फिर ऐसे कारणों से, जिन्हें समझ पाना आसान नहीं है, क्रिश्चियनों को लागू विवाह की विधि, अवास्तविक और पुरानी बनी हुई है।"

ऐसे संप्रेक्षण करने के पश्चात्, विद्वान न्यायाधीश ने, भारत संघ को निदेश दिया है कि वह उक्त आदेश की एक प्रति की प्राप्ति की तारीख से छह माह की अवधि के भीतर, पहले से ही निर्दिष्ट विधि आयोग द्वारा इसकी 90वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशों के बारें में, अन्तिम विनिश्चय करें। ऐसे सकारात्मक निदेश के बावजूद भी, विधि का संशोधन करने के लिए कोई अन्तिम विनिश्चय नहीं किया गया है, हांलाकि यह निदेश 13-12-1989 को दिया गया था।

2.3 मेरी सोनिया बनाम भारत संघ[3] के मामले में, केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने, धारा 10 के भेदमूलक शब्दों को अभिखंडित किया है। उच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणा निम्नलिखित शब्दों में है :—

> ".....सभी उपर्युक्त कारणों से हम यह अभिनिर्धारित करेंगे कि उपबंधों के अपमानजनक भाग, जिन्हें पहले ही उपदर्शित किया गया है, पृथक्करणीय हैं और वे अधीकारातीत होने के कारण अभिखंडित किए जाने चाहिए इसके अतिरिक्त, हम यह भी अभिनिर्धारित करते हैं कि उपबंधों का शेष भाग, जारकर्मरहित, क्रूरता के आधारों पर विवाह के विघटन को अनुज्ञात करने वाले विधिमान्य उपबंधों के रूप में, बना रह सकता है। हमारे विचार ऐसे अनुक्रम को अपनाना, अधिनियम की धारा 10 के संपूर्ण उपबंधों का अभिखंडन करने से बचने के लिए और अर्जीदारों को आवश्यक अनुतोष प्रदान करने के लिए तथा वैसी ही स्थिति में अवस्थित ऐसी क्रिश्चियन पत्नियों को, जिनके लिए वस्तुतः सभी आशय और प्रयोजन समाप्त हो चुके हैं, अपने विवाह का विघटन प्राप्त कर पाने में, सहायक होगा।

तदनुसार, हम अधिनियम की धारा 10 के उपबंधों से "अगम्यगमनात्मक" और "जारकर्म के साथ ही" शब्दों को पृथक् और अभिखंडित करते हैं तथा यह घोषित करते हैं कि धारा 10 इसके पश्चात् उपर्युक्त शब्दों के बिना, प्रभावी बनी रहेगी।"

2.3.1 पूर्वोक्त घोषणा करते हुए, पूर्ण न्यायपीठ ने, निम्नलिखित और संगत संप्रेक्षण किए हैं :—

> "इस मामले को छोड़ देने के पूर्व, हम यह संप्रेक्षण करना चाहेंगे कि इन दोनों मूल याचिकाओं ने, जो वर्ष 1988 में फाइल की गई थी, यह निर्देश देते हुए, न्यायमूर्ति थामस द्वारा दिए गए सकारात्मक निर्देश के बावजूद कि केन्द्रीय सरकार को, अधिनियम की धारा 10 में संशोधन करने के लिए विधि अयोग द्वारा उसकी 90वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशों पर अन्तिम विनिश्चय करना है, आज तक इस मामले में कोई अन्तिम विनिश्चय नहीं किया गया है। जारी किया गया निदेश यह था कि 13-12-1990 के आदेश की प्रति के प्राप्त होने की तारीख से छह मास के भीतर विनिश्चय किया जाना है। ऐसे अलंघनीय निदेश के बावजूद भी केन्द्रीय सरकार ने, इस मामले में तर्कों के समाप्त होने तक, इस विषय में किए गए विनिश्चय के, यदि कोई है, बारे में इस न्यायालय को सूचित करने की भी परवाह नहीं की है जबकि केन्द्रीय सरकार के प्लीडर ने, वह पत्राचार प्रस्तुत किया है जिसे हम पहले ही निर्दिष्ट कर चुके हैं। इस बात पर ध्यान देने के पश्चात्, यदि हम ऐसा कह सकें तो उन मुद्दों पर विधि में संशोधन करने की बाबत, जिनके बारें में भारत के क्रमिक विधि आयोगों ने, कम से कम 1961 से आगे और भारत के विभिन्न न्यायालयों ने, अपने संप्रेक्षणों और निर्देशों के माध्यम से, जिनमें इस मामले में दिया गया सकारात्मक निर्देश भी है, विधि में संशोधन करने के संबंध में, केन्द्रीय सरकार द्वारा पूर्णतः, दुराग्रही रुख अपनाया गया है, हमने यह विनिश्चय किया है कि मामले के गुणागुण पर विचार करें और स्वीय विधियों के बीच खामियों को दूर करने के प्रयास के रूप में विधितः अनुज्ञेय सीमा तक, एक सुधारक की भूमिका का निर्वाह करते हुए, मांगा गया अनुतोष मंजूर करें।"

2.4 यूथ वेलफेअर फेडरेशन (जिसका प्रतिनिधित्व उसके अध्यक्ष, के० जे० प्रसाद ने किया) बनाम भारत संघ[5] के मामले में, आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ ने, यह अभिनिर्धारित किया था कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10, पत्नी के प्रति भेद मूलक होने के कारण "जिसे पति की अपेक्षा, विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करने के लिए, अधिक कठिन आधारों के अधीन रखा गया है.. ..." संविधान के अनुच्छेद 14 से असंगत है।

2.5 इसी न्यायालय की एक विशेष न्यायपीठ ने, एन० शारदा मणि बनाम जी० अलक्जेंडर और अन्य[6] के मामले में, पुनः न्यायपीठ के दृष्टिकोण को निम्नवत् दुहराया।

> ".....हमारा यह अभिमत है कि वे आधार, जो धारा 10 के अधीन पत्नी (एकमेव "पति") को उपलब्ध हैं, विवाह-विच्छेद चाहने वाले पति (एकमेव-"पत्नी") को भी उसके द्वारा फाइल की गई अर्जी में उपलब्ध कराए जाने चाहिए और विवाह-विच्छेद के लिए याचिका में पति और पत्नी को उपलब्ध आधारों के बीच स्पष्ट व्यापक भेदमूलकता पर संसद् को तत्काल ध्यान देना चाहिए। इस असंगति पर ध्यान देना और उपर्युक्त विधान द्वारा इस शून्य को भरना संसद् का कार्य है। यूथ वेलफेअर फेडरेशन मामले (पूर्वोक्त) में, पूर्ण न्यायपीठ द्वारा यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया गया था कि भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 10 में उपबंध द्वारा संविधान पूर्व का विभेद, पुरुष और स्त्री के बीच समानता के परिक्षण में, जैसा कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 के अधीन परिकल्पित है, सफल नहीं हो सकता।"

[**अनिल कुमार माहषि बनाम भारत संघ**[7] के मामले में, भारत के उच्चतम न्यायालय ने, एक अन्य संदर्भ में, यह अभिनिर्धारित किया था कि पति, मात्र जारकर्म के आधार पर, विवाह का विघटन प्राप्त कर सकता था, किन्तु पत्नी को यह साबित करना पड़ता था कि पति केवल जारकर्म का दोषी नहीं था अपितु वह जारकर्म, (i) अगम्यगमनात्मक, (ii) द्विविवाह सहित, (iii) अन्य स्त्री के साथ विवाह सहित, (iv) ऐसी क्रुरता सहित, जो जारकर्म के बिना ही उसे सहवास विच्छेद की हकदार बना देती, का दोषी भी था। उस हद तक यह पत्नी ही थी जिसके प्रति भेदभाव किया गया था और जो अलाभप्रद स्थिति में थी।]

2.6 जहां तक उच्च न्यायालयों के पूर्वोक्त विनिश्चयों की बात है, उनका उन्हीं रायों पर आबद्धकर प्रभाव है, जहां पर वे उच्च न्यायालय अवस्थित हैं, अन्य राज्यों पर नहीं और इस कारण भी कि संपूर्ण अधिनियम को एक नए और आधुनिक विधान द्वारा, प्रतिस्थापित किए जाने की जरुरत है, यह आत्यंतिक रूप से अनिवार्य है कि विधि आयोग द्वारा तैयार किए

गए और उच्चतम न्यायालय के भूतपूर्व न्यायाधीश, न्यायमूर्ति के० के० मैथ्यू की अध्यक्षता में, आयोग द्वारा पुनः दोहराए गए, प्रारूप विधेयक के अनुसार, जो इसमें उपर निर्दिष्ट विधि आयोग की रिपोर्टों के साथ संलग्न है, एक नई विधि अधिनियमित की जाए ।

भाग 2

अधिनियम की धारा 17 और धारा 20 का संशोधन करने की तत्काल आवश्यकता

2.7 यदि किसी कारणवश इस रिपोर्ट के भाग 1 और पैरा 1.5.2 पूर्वोक्त में यथा सुझाई गई नई व्यापक विधि को अधिनियमित करने में कुछ विलंब होता है तो उस स्थिति में और इसमें इसके पश्चात् उल्लिखित कारणों के लिए, धारा 17 और धारा 20 के उपबंधों का तत्काल संशोधन किया जाए ।

2.8 लोकाचार से यह प्रतित होता है कि इस अधिनियम के अधीन विवाह का विघटन चाहने वाले पक्षकार सामान्यतः, जिला न्यायालयों में जाते हैं किन्तु ये न्यायालय केवल प्रारंभिक डिक्री प्रदान कर सकते हैं जिसकी उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों से अन्यून की न्यायपीठ द्वारा पुष्टि होनी होती है । वास्तव में, यदि उच्च न्यायालय में केवल दो न्यायाधीश हैं तो वे दो न्यायाधीश न्यायपीठ का रूप होंगे और ऐसे निर्देश को सुन सकेंगे (तथ्यतः आज सिक्किम के सिवाय, कहीं भी केवल दो न्यायाधीश वाले उच्च न्यायालय नहीं हैं) देश के सभी उच्च न्यायालयों में बहुत अधिक कार्य होने के कारण, इस अधिनियम के अधीन पुष्टि किए जाने वाले मामलों की सुनवाई के लिए तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ का गठन वास्तव में कई वर्षों से काफी समय लेता है । ऐसे पक्षकार, जो जिला न्यायालय से विघटन की प्रारंभिक डिक्री प्राप्त करते हैं, उन्हें तब तक बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक की न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ का गठन नहीं हो जाता है । हिन्दू और मुस्लिम शासित स्वीय विधियों में तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ द्वारा पुष्टि के लिए कोई उपबंध नहीं हैं । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन विवाह-विच्छेद या विघटन के लिए डिक्री अंततः, जिला न्यायाधीश द्वारा की जा सकेगी और यह हारने वाले पक्षकार के ऊपर है कि वह उच्च न्यायालय में अपील फाइल करे जो वास्तव में, दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुनी जानी होती है । ऐसा ही मुसलमानों के मामलों में होता है ।

2.8.1 उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ द्वारा पुष्टि के लिए विद्यमान उपबंध, आलोचना :— उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ द्वारा पुष्टि के लिए पूर्वोक्त उपबंध की, देश के लगभग सभी उच्च न्यायालयों द्वारा समान रूप से आलोचना की गई है । उन्होंने यह सुझाव दिया है कि सुसंगत उपबंधों का, अन्य स्वीय विधियों के तत्स्थानी उपबंधों के समान बनाने के लिए, संशोधन किया जाए । उक्त विनिश्चयों का संक्षिप्त वर्णन उचित होगा ।

2.8.2 श्रीमती नीना बनाम जोन पोरमर[8] में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ ने, निम्नलिखित रूप में संप्रेक्षण किया :—

> "·····भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1969 की धारा 17 द्वारा विहित प्रक्रिया, जिसमें जिला न्यायाधीश द्वारा की गई विवाह के विघटन के लिए डिक्री की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की अपेक्षा है, प्रभावित पक्षकारों की पीड़ा को और बढ़ा देती है, यद्यपि, दोनों में से कोई भी पक्षकार अपील नहीं करना चाहता है । हम समझते हैं कि इस प्रक्रिया को जारी रखने का कोई औचित्य नहीं है, विशेषकर जब तक कि ऐसी प्रक्रिया विवाह विघटन, अर्थात् हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 से संबंधित अन्य अधिनियमों द्वारा विहित नहीं की गई है । इसलिए, हमारी राय ने, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 में समुचित संशोधन करने की तत्काल आवश्यकता है जैसा कि 1957 का अधिनियम सं० 30 द्वारा उत्तर प्रदेश में किया गया है ।

2.8.3 इसी प्रकार, कलकत्ता उच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ ने, **स्वप्न घोष बनाम सदानन्द घोष और अन्य[9]** के मामले में, निम्नलिखित संप्रेक्षण किया :—

> "तथापि, मेरी स्वयं की आशंका है कि क्या भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 17 के उपबंध, जिसमें उच्च न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय की डिक्री की पुष्टि की अपेक्षा है, को अधिक समय तक रखे रहना चाहिए । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन हिन्दूओं, बौद्धों, सिक्खों और जैनियों में से और पारसी विवाह और विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1936 के अधीन पारसियों में, मुस्लिम विवाह विघटन अधिनियम, 1939 के अधीन मुस्लिमों में विवाह के विघटन के लिए डिक्री जिला न्यायालयों द्वारा और अंतिम उल्लिखित अधिनियम के अधीन

> निम्न पंक्ति के न्यायालयों द्वारा दी जाती है तथा सभी ऐसी डिक्रियां उच्च न्यायालय से किसी पुष्टि के बिना, पूरी क्षमता से प्रभावी होती हैं । अतः, विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 17 के उपबंधों को बनाए रखने की बात करना कठिन है जो यह उपबंध करती है कि क्रिश्चियन दंपती को, जिला न्यायालय से विघटन के लिए डिक्री अभिप्राप्त करने के पश्चात् भी, काफी समय तक चलने वाले और तनावपूर्ण मुकदमेबाजी में पड़े रहना पड़ता है क्योंकि उन्हें उनकी डिक्रियां पूर्ण और आबद्धकर हों, इसमें पूर्व उच्च न्यायालय से उनकी पुष्टि के लिए प्रतिक्षा करनी पड़ती है । धारा 17 के ये उपबंध, यह उपधारणा करने पर भी कि उस समय जब 19वीं शताब्दी के मध्य में उन्हें अधिनियमित किया गया था, अब संभवतः, उन प्रयोजनों के लिए और विशेष रूप से विवाह-विषयक विधियों से संबंधित परवर्ती अधिनियमों के परिप्रेक्ष्य में, बेकार हो चुके हैं जो अन्य समुदायों को लागू होते हैं और इसमें इसके पूर्व निर्दिष्ट किए गए हैं और उनका परिणाम केवल मुकदमेबाजी को, उन मामलों में बढ़ाए रखना होता है, जहां दोनों में से कोई भी पक्षकार किसी उच्चतर न्यायालय द्वारा अपने मामले के और पुनर्विलोकन या पुनर्विचार के पक्ष में नहीं होता । इन्ही सब बातों के कारण, उत्तर प्रदेश राज्य के विधान-मंडल ने, राज्य संशोधन अधिनियम, 1957 का अधिनियम सं० 30 द्वारा विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 17 में से इन उपबंधों को हटा दिया है । हम यह विचार करने के लिए बाध्य हैं कि हमारी संसद् या राज्य के विधान-मंडलों को (विवाह और विवाह-विच्छेद समवर्ती सूची के विषय होने के कारण), 1869 के विवाह-विच्छेद अधिनियम में वैसे ही संशोधन पुरःस्थापित करने के प्रश्न पर, बहुत गंभीरता-पूर्वक विचार करना चाहिए ताकि इसे भारत में अन्य समुदायों को शासित करने वाली इस विषय पर अन्य सदृश्य अधिनियमितियों के सामंजस्यपूर्ण रूप से, अनुरूप बनाया जा सके और हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की विशेष न्यायपीठ ने, मीना बनाम जॉन परमेर ए० आई० आर०, 1985 मध्य प्रदेश, 85 के मामले में, पृष्ठ 87 पर (एफ०बी०) अधिनियम की धारा 17 के अधीन पुष्टि संबंधी कार्रवाई को निपटाते समय जोरदार शब्दों में उस आशय की भी सिफारिश की है ... क्या धारा 17 के उन उपबंधों द्वारा क्रिश्चियन दंपत्तियों की प्रक्रियात्मक उपयुक्तता और सम्यक् प्रक्रिया से इंकार नहीं किया गया है जिसमें अनिवार्य पुष्टिकरण सुनवाई के लिए उपबंध है और ऐसा अन्य समुदायों के दंपतियों के संबंध में नहीं है, जिनकी विवाह विषयक कार्यवाहियां किसी ऐसी और सुनवाई के अध्यधीन नहीं हैं ।

2.8.4 ऐसे ही विचार **राकेश फ्रांसिस टोपो बनाम बाथवेट फ्रांसिस टोपो[10]** के मामले में कलकत्ता उच्च न्यायालय के एक अन्य विनिश्चय में दुहराए गए हैं ।

2.9 इसी आशय के संप्रेक्षण, बम्बई उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायपीठ द्वारा, **श्रीमती प्रमिति बर्गीज और अन्य बनाम लाउरिल जार्ज बर्गीज और अन्य [11]** के मामले में किए गए हैं :—

> "हम यह और पाते हैं कि धारा 17 यह उपबंध करती है कि यदि उच्च न्यायालय में केवल दो न्यायाधीश होते हैं और जिला न्यायालय द्वारा पारित की गई डिक्री उक्त दो न्यायाधीशों के समक्ष पुष्टि के लिए आती है और उनकी राय में मतभेद है तो उपबंध यह अनुध्यात करते हैं कि वरिष्ठ न्यायाधीश का विनिश्चय अभिभावी होगा । हमारे विचार से धारा 16, 17 और 20 द्वारा अनुध्यात पूर्वोक्त प्रक्रिया अयुक्तियुक्त है और मनमानी प्रकृति की है । इससे कोई उपयोगी लक्ष्य या प्रयोजन पूरा नहीं हो पाता । उपबंधित प्रक्रिया बिना किसी उपयोगी प्रयोजन के प्रभावित पक्षकारों की पीड़ा की ओर बढ़ाने वाली है । यदि अन्य समान अधिनियमितियों में ऐसी प्रक्रिया का अभाव है तो हमें इसमें कोई औचित्य नहीं दिखाई पड़ता कि यह प्रक्रिया क्रिश्चियन दंपत्तियों को ही किस लिए लागू की जानी चाहिए । उक्त प्रक्रिया, ऐसी परिस्थितियों में उपयुक्त संशोधन के द्वारा विखंडित की जानी चाहिए जिनके बारे में हमारा सुझाव है कि अधिनियम में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए ।
>
> . . . हम यह भी पाते हैं कि अधिनियम की धारा 16, 17 और 20 के उपबंध मनमाने और अयुक्तियुक्त भी हैं । हमारा सुझाव है कि विधायिका को हस्तक्षेप करना चाहिए और अतिशीघ्र "अधिनियम" में उपयुक्त संशोधन करने चाहिए । हम निदेश देते हैं कि इस आदेश की एक प्रति विधि और न्याय मंत्रालय को तत्काल ऐसी कार्रवाई करने के लिए, जिसे करना वे ठीक समझे, भेजी जानी चाहिए ।" **(जोर दिया गया)**

2.10 उपर्युक्त संप्रेक्षणों को दुहराने वाला नवीनतम विनिश्चय केरल उच्च न्यायालय का है । तीन न्यायाधीशों की एक विशेष न्यायपीठ ने, अपने 10 अगस्त, 1998[12] के आदेश में, इस प्रकार संप्रेक्षण किया था । सुसंगत संप्रेक्षण निम्नलिखित प्रभाव के हैं :—

> **"इस न्यायालय के समक्ष, हालांकि प्रत्यर्थी पर सूचना तामील की गई है किन्तु न तो वह उपसंजात हुआ है और न ही काउंसिल द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है, हम ऐसा महसूस करते हैं कि अब वह समय आ गया है जब भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम की धारा 17 और 20 के अधीन पुष्टि से संबंधित उपबंध परिनियम से हटा दिया जाए ।**

धारा 17 यह उपबंध करती है कि जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई विवाह के विघटन की प्रत्येक डिक्री उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होगी । यह और उपबंध किया गया है कि विवाह के विघटन की किसी डिक्री की पुष्टि के मामले (जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या तीन या उससे अधिक है) ऐसे तीन न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा सुने जाएंगे या (जहां उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की संख्या दो है) ऐसे दो न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा सुने जाएंगे । धारा 20 यह उपबंध करती है कि किसी जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई विवाह की अकृतता की प्रत्येक डिक्री उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होगी और वह भी उन उच्च न्यायालयों में, जहां न्यायाधीशों की संख्या तीन या उससे अधिक है, तीन न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा और जहां उच्च न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा विवाह-विच्छेद के लिए धारा 10 के अधीन और विवाह अकृत और शून्य घोषित करने के लिए धारा 18 के अधीन अर्जी जिला न्यायालय, साथ ही उच्च न्यायालय दोनों, के समक्ष फाइल की जा सकती है । जब ऐसी अर्जियां उच्च न्यायालय में फाइल की जाती हैं तो उनकी सुनवाई एकल न्यायाधीश द्वारा की जाती है और उससे दो न्यायाधीशों से गठित न्यायालय के समक्ष अपील होती है । उपबंध ऐसा होने पर, हमारा यह अभिमत है कि जिला न्यायालय की डिक्री की तीन न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा पुष्टि आत्यंतिक रूप से अवांछित है । हमारा यह भी मत है कि पुष्टि के उपबंध को हटाया जा सकता है और उसके स्थान पर, धारा 10 या धारा 18 के अधीन पारित आदेश द्वारा व्यथित किसी पक्षकार द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल करने के लिए उपबंध किया जा सकता है । ऐसी अपील दो न्यायाधीशों से गठित न्यायालय द्वारा सुनी जा सकती है जैसा कि सभी अन्य विवाह विषयक अपीलों के मामले में है ।

2.11 सोलोमन देव सहायम् सेल्वराज बनाम चन्द्रिहा मेरी[13] के मामले में ऐसे ही विचार व्यक्त किए गए है ।

2.12 1957 का उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम सं० 30 :—

यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि काफी पहले 1957 में, उत्तर प्रदेश विधान-मंडल ने, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 17 के खंड 1 से 5 तक का लोप करते हुए, 1957 का उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम सं० 3 द्वारा अधिनियम का संशोधन किया गया है, जिनमें यह उपबंध है कि केवल जिला न्यायालय ही प्रारंभिक डिक्री दे सकता है और ऐसी प्रारंभिक डिक्री की उच्च न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की विशेष न्यायापीठ द्वारा पुष्टि की जानी है और अन्य सहबद्ध उपबंध भी है । धारा 20 का, जो यह उपबंध करती है कि किसी जिला न्यायाधीश द्वारा दी गई विवाह की अकृतता की प्रत्येक डिक्री उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि के अधीन होगी, भी उक्त उत्तर प्रदेश संशोधन अधिनियम द्वारा लोप कर दिया गया था । उपर्युक्त संशोधन अधिनियम के बारे में, क्रिश्चियन समुदाय के किसी वर्ग द्वारा न तो कोई आक्षेप किया गया है और न ही किसी ने, उच्च न्यायालयों के ऊपर उल्लिखित संप्रेक्षणों की आलोचना की है ।

अध्याय 3

विधि आयोग की सिफारिशें

3.1 विधि आयोग, इसे ऊपर उल्लिखित विधि आयोग द्वारा उसकी पूर्ववर्ती रिपोर्टों में, व्यक्त किए गए विचारों से, और देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा सर्वसम्मति से व्यक्त किए गए विचारों से पूर्णतः सहमत है ।

(i) अतः, यह सिफारिश की जाती है कि संसद्, भारत में क्रिश्चियनों के विवाह, विवाह-विच्छेद और अन्य सहबद्ध पहलुओं को शासित करने वाली एक व्यापक विधि अधिनियमित करे । विधि आयोग की 15वीं रिपोर्ट के साथ संलग्न प्रारूप विधेयक, विधि आयोग की 22वीं रिपोर्ट द्वारा यथा उपांतरित क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1961 का प्रारूप और इसमें ऊपर निर्दिष्ट क्रिश्चियन विवाह विधेयक, 1994 का प्रारूप ऐसी किसी विधि के लिए आधार के रूप में होने चाहिए । हम यह नहीं समझते हैं कि अब इस मामले को और टालने के लिए कोई आधार रह गया है ।

(ii) विधि आयोग यह और सिफारिश करता है कि किसी भी दशा में, भारतीय विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1869 की धारा 17 के पैरा 1 से 5 तक की और धारा 20 को तत्काल हटा दिया जाए । इस प्रकार, धारा 17 का अंतिम शेष पैरा, धारा 17 बन जाएगा और धारा 10 को भी इस रिपोर्ट के पैरा 1.5.2 में उपदर्शित रीति से, संशोधित किया जाना चाहिए ।

3.2 विधि आयोग इस तथ्य पर जोर देना चाहता है कि धारा 17 और धारा 20 में अंतर्विष्ट उपबंध मात्र प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं और इसमें सुझाए गए संशोधनों का क्रिश्चियन समुदाय के किसी सदस्य द्वारा विरोध किए जाने की सर्वथा कोई संभावना नहीं है । अधिनियम की धारा 10 का भी उचित रीति से संशोधन किए जाने की आवश्यकता है ताकि विवाह-विच्छेद अभिप्राप्त करने में पति की तुलना में पत्नी के साथ विभेद न रह जाए जैसा कि हमने उपर पैरा 1.5.2 में उपदर्शित किया है । वास्तव में अपमानजनक भाग पहले ही केरल और आंध्र प्रदेश न्यायालय द्वारा विखंडित किए जा चुके हैं और उक्त विनिश्चयों के विरुद्ध, क्रिश्चियन समुदाय के किसी सदस्य द्वारा कोई विरोध नहीं किया गया है । विधि आयोग यह सिफारिश करता है कि कम से कम ये संशोधन अविलंब किए जाएं ।

हस्ता०/-
(न्यायमूर्ति श्री बी० पी० जीवनरेड्डी) (सेवानिवृत्त)
अध्यक्ष

हस्ता०/- (न्यायमूर्ति सुश्री लीला सेठ) (सेवानिवृत्त) सदस्या	हस्ता०/- (एन० एम० घटाटे) सदस्य	हस्ता०/- (डा० सुभाष चन्द्र जैन) सदस्य-सचिव

तारीख 18 नवम्बर, 1998

पाद-टिप्पण और संदर्भ

अध्याय 1

1. "भारत में क्रिश्चियन के मध्य विवाह और विवाह-विच्छेद विषयक विधि" पर भारत के विधि आयोग की 15वीं रिपोर्ट "क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1960" के साथ संलग्न है ।
2. "क्रिश्चियन विवाह और विवाह विषयक मामले विधेयक, 1961" पर भारत के विधि आयोग की 22वीं रिपोर्ट ।
3. मेरी सोनिया बनाम भारत संघ, 1995 (I) केरल एल० टी० 644.
4. एस० डी० सेल्वराज बनाम चन्द्रिहा मेरी (1968)[1], एम० एल० जे० 289.
5. टी० एस० बशियस बनाम एम० विक्टर, ए०आई०आर० 1970 मद्रास 12.

अध्याय 2

1. स्वप्न घोष बनाम सदानंद घोष, ए० आई० आर० 1989 कलकत्ता ।
2. मेरी सोनिया बनाम भारत संघ में निर्दिष्ट 1988 की मूल याचिका सं० 5805, 1995 (1) केरल एल०टी० 644
3. मेरी सोनिया बनाम भारत संघ, 1995 (1) केरल एल० टी० 644, 672.
4. पूर्वोक्त, पृष्ठ 673.
5. यूथ वेलफेयर फेडरेशन (जिसका प्रतिनिधित्व उसके अध्यक्ष के० जे० प्रसाद ने किया) बनाम भारत संघ (1996) 4, आन्ध्र प्रदेश एल० जे० 1138.
6. एस० शारदा मणि बनाम जी० अलक्जेंडर, ए० आई० आर० 1998, आन्ध्र प्रदेश 157, 161-162.
7. अनिल कुमार साहनि बनाम भारत संघ (1994), 5 एस० सी० सी० 704, 706.
8. श्रीमती मीना बनाम यूनियन पीरमेर, ए० आई० आर० 1985, मध्य प्रदेश 85, 87.
9. स्वप्न घोष बनाम सदानंद और अन्य, ए० आई० आर०, 1989 कलकत्ता 1, 2.
10. रमीश फ्रांसिस टोपो बनाम वायलेट फ्रांसिस टोपो, ए० आई० आर०, 1989 कलकत्ता 128.
11. श्रीमती प्रगति बर्नीज और आदि बनाम सार्इरिक जार्ज बर्नीज और आदि ए० आई० आर०, 1997, मुम्बई, 349 (एफ बी), 373.
12. केरल उच्च न्यायालय 10-8-98 को विनिश्चित किया गया, सी० एम० संदर्भ सं० 48/98 (बिसी मैथ्यू बनाम साबू अब्राहिम).
13. सोलोमन देव सहायम् सेल्वराज बनाम चन्द्रिहा मेरी (1968)[1], एम० एल० जे० 289.

प्रभाकरना—53 एम. ऑफ एल. अंड जे. सी. ए./आय. सी./एन.डी./90——4-11-2000—100.

©

PLD. 92 CLXIV (Hindi)
100—2000 (DSK-IV)

Price : (Inland) *Rs.* 532 (Foreign) £ 20.66 *or* $ 33 77 *Cents.*

PRINTED BY THE GENERAL MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, NASHIK-422 006
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI-110 054
2000